आचार्य तुलसी–वाङ्गमय में सामाजिक चेतना के स्वर

डॉ. सत्यनारायण भारद्वाज
सहायक आचार्य
संस्कृत एवं प्राकृत विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ

विषय–प्रवेश

काव्य समाज की जागृत अभिव्यक्ति है। अतः काव्य और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध है। उपन्यासकार प्रेमचन्द, साहित्य और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध मानते हुए कहते हैं –''साहित्य जीवन की आलोचना है, चाहे वह निबंध के रूप में हो या कहानियों और काव्य के रूप में, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।''[1] महावीर प्रसाद द्विवेदी का अभिमत है कि जिस काव्य से समाज को कोई शिक्षा नहीं मिलती, वह व्यर्थ है।[2]

साहित्यिक रचनाएं पूर्ण रूप से सामाजिक चेतना का अनुकरण करती हैं। कवि या साहित्यकार अपने मौलिक और क्रान्त चिंतन से समाज में नव चेतना भरकर उसे सजग करता है इसीलिए ही उसे समाज का पथदर्शक, सुधारक या निर्माता कहा जा सकता है। कवि के व्यक्तित्व की महत्ता तभी प्रकट होती है, जब सामाजिक चेतना के साथ उसका अन्तर्विरोध समाप्त हो जाए।

सामाजिक मूल्यों की पुनः स्थापना महापुरुष या संतवर्ग ही कर सकता है क्योंकि उनकी वाणी में आत्मतेज झलकता है, फिर चाहे वह बुद्ध हो या महावीर, कबीर हो या नानक, गांधी हो या आचार्य तुलसी और आचार्य महाप्रज्ञ।

सामाजिक चेतना के स्वर

आचार्य तुलसी संत कवि थे पर उनका समाज–सुधारक और क्रांतिकारी रूप अधिक मुखर हुआ है। आचार्य तुलसी ने काव्य के माध्यम से समाज के हृदय तक पहुंचने का प्रयत्न किया। वे तत्कालीन युगीनधारा की परिस्थिति में नहीं बहे, वरन् सामाजिक रूढ़ियों एवं कुसंस्कारों को बदलने के लिए आजीवन जूंझते रहे। आचार्य तुलसी इस सत्य को स्वीकार करके चलते थे कि समाज के परिवेश से प्रभावित हुए बिना सृजन कार्य प्रभावी एवं हृदयस्पर्शी नहीं बन सकता। समाज को आंदोलित करने वाला कवि ही क्रांतिकारी हो सकता है। इसी कारण उनके काव्य में सामाजिक जीवन की यथार्थ स्थिति का उद्घाटन हुआ है। समाज के प्रति उनकी सक्रियता एवं सजगता का दिग्दर्शन निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है –''शोषणमुक्त, स्वतंत्र और स्वस्थ समाज संरचना मेरा चिरपालित स्वप्न है। इसे आकार देने के लिए मैं प्रयत्नशील हूँ। जीवन की अतिम सांस तक मैं समाज और राष्ट्र–उत्थान के लिए कार्य करता रहूंगा पर मेरा दावा यह नहीं कि समग्र विश्व इस रूप में ढ़ल जाएगा।''

आचार्य तुलसी ने समाज की त्रुटियों, कमियों और विशेषताओं को यथार्थ की आंख से देखा और उसे साहित्य में उकेर दिया। सामाजिक कुरूढ़ियों की निर्भीक अभिव्यक्ति और उनके परिमार्जन के सूत्र प्रस्तुत करने से वे युग के प्रतिनिधि कवि बन गए। अंधभक्त की भांति उन्होंने जो है, उसे ही स्वीकार नहीं किया, जो होना चाहिए, उस पर गहरा विमर्श किया। उन्होंने व्यक्ति–व्यक्ति का विवेक जगाकर समाज को अंधरूढ़ियों से बाहर निकाला। वे जिस स्वस्थ एवं आदर्श समाज की रचना करना चाहते थे, वह स्वार्थत्याग और बलिदान सिखाने वाला था। इसके लिए समाज के हर वर्ग की बुराई पर व्यंग्य करना आचार्य तुलसी का लक्ष्य था। उनके व्यंग्य का शिकार कभी व्यक्ति बना तो कभी समाज, कभी धर्म बना तो कभी कर्म।

सामाजिक वेदना जब कवि के हृदय में स्पंदित होती है, तब उसके काव्य में मानवता का स्रोत प्रवाहित होता है। कोई भी मानवतावादी कवि समाज में संकीर्ण भावना को जीवित नहीं देख सकता। वर्ण, जाति या जन्म के आधार पर किसी को छोटा–बड़ा या अछूत मानना आचार्य तुलसी की दृष्टि में मानवता का अपमान था। आचार्य तुलसी जाति, वर्ण एवं वर्ग से ऊपर उठकर, स्वस्थ समाज–संरचना के स्वप्नद्रष्टा थे। दिनकर की भांति उन्होंने स्पष्ट उद्घोषणा की कि जब तक मानव–मानव में समानता स्थापित नहीं होगी, शांति की स्थापना तो दूर उसकी कल्पना करना भी दूरूह है।'' वर्ण और जाति के आधार पर वैमनस्य को बढ़ावा देने वाले धर्म के तथाकथित ठेकेदारों की वे धारदार शब्दों में कड़ी आलोचना करते हुए कहते हैं –''यदि ईश्वर किसी को जन्म से ऊँचा और किसी को नीच बनाता है तो मैं उसे ईश्वर मानने के लिए तैयार नहीं हूं।''[3]

आचार्य तुलसी ने अपने काव्य में पूंजीवाद का विरोध किया लेकिन समाजवाद लाने का तरीका उनका मार्क्स से भिन्न था। वे बलप्रयोग से नहीं अपितु हृदय–परिवर्तन से आए समाजवाद को उपयोगी मानते थे। सामाजिक वैषम्य को देखकर आचार्य तुलसी का करूणार्द्र हृदय उद्वेलित हो उठता था। उन्होंने समाज के निम्न वर्ग की वेदना और पीड़ा को काव्य में प्रस्तुत ही नहीं किया, वरन् उन्हें इस स्थिति के कारणों का अवबोध भी कराया। उन्होनें श्रमिक वर्ग में नयी चेतना भरी। मजदूरों की वास्तविक स्थिति का चित्रण और उनमें जागृति की प्रेरणा भरने वाली निम्न पंक्तियां अत्यन्त मार्मिक हैं–

दिन भर कठिन परिश्रम करता, तो भी पूरा पेट न भरता,

तन पर चिथड़ा फटा–पुराना, घर का भी है नहीं ठिकाना।। अणु पृ. 49।।

निर्बल और सबल के बीच उत्पन्न वर्ग–संघर्ष की युग के संदर्भ में अभिव्यक्ति कितनी स्वस्थ, सार्थक, तर्कसंगत और सत्य प्रतीत होती है, उसका एक उदाहरण यहाँ दृष्टव्य है–

निर्बल का बस नहीं सबल के, आगे पल भर टिक पाता,
रोष रांक का होठों तक आ आकर 'तुलसी' रूप जाता।
किसे कहे बेचारा जिसका, कोई नहीं सहारा है,
मन मसोस रह जाने के, अतिरिक्त और क्या चारा है?।।

आचार्य तुलसी ने ऐस स्वस्थ समाज–संरचना की कल्पना की, जहां मानवीय मूल्यों का विकास हो। विषमता और संघर्ष न हो तथा प्रेम, सौहार्द और सह–अस्तित्व का वातावरण हो। इसके लिए उनका स्पष्ट अभिमत था कि बिना व्यक्ति–विकास के या व्यक्ति–सुधार के समाज–सुधार का स्वप्न निरर्थक है। इसी सत्य को काव्यमय प्रस्तुति देते हुए उन्होंने कहा –

स्वस्थ समाज नई रचना का, नारा सबको प्यारा है।

बिना व्यक्ति–संरचना के, रह जाता केवल नारा है।। नंदन पृ. 11।।

'मेरा ही चिंतन सत्य है' यह ऐकान्तिक आग्रह सामुदायिक शान्त सहवास का सबसे बड़ा शत्रु है। भाई–भाई के बीच होने वाले द्वन्द्व को उन्होंने जिस प्रखरता और स्पष्टता से व्यक्त किया है, वह उल्लेखनीय है–

यदि सोचे गहराई से, भाई से बढ़ क्या नाता है?

किन्तु जहां इस नाते में, 'तुलसी' कड़वापन आता है।

होती नष्ट शांति जीवन की, चढ़ता स्वार्थों का पारा,

विनय स्नेह के स्थान रक्त, बरसेगा पलकों के द्वारा।।

वर्तमान युग की सबसे बड़ी समस्या है –संयुक्त परिवारों का विघटन। कवि को इस बात की अत्यन्त चिंता है कि इससे सांस्कृतिक विरासत का उत्तरोत्तर क्षरण हो रहा है। अलगाववादी मनोवृत्ति वाली युवापीढ़ी को रूपान्तरण की प्रेरणा देते हुए कवि कहते हैं –''जो व्यक्ति परिवार में बढ़ते हुए झगड़ों के कारण अलग रहने का निर्णय लेते हैं, उन्हें स्थान के बदले स्वभाव बदलने की बात सोचनी चाहिए।'' संयुक्त परिवार को बचाए रखने की प्रेरणा देने में कवि का काव्य–कौशल द्रष्टव्य है–

युग–युग तक चली फली–फूली, व्यापक संयुत–परिवार प्रथा,

वह छिन्न–भिन्न हो गई आज, कैसी है उसकी करुण कथा।

जो टूट–फूट हो गई, जो बची सुरक्षित रहे वही,

परिवर्तन–परिष्कार से भी, मिलते जाएं संस्कार सही।।

श्रावक पृ. 209

सामाजिक संगठन में एकता के बिना समाज का विकास असंभव है। 'संघे शक्तिः कलौ युगे' इस बात पर आचार्य तुलसी की पूर्ण आस्था थी। संघ में यदि संगठन या ऐक्य नहीं होता तो वह केवल हड्डी का ढांचा मात्र रह जाता है। संगठन और संघ को रूपायित करते हुए कवि कहते हैं–

संघ में ही शक्ति, इसमें है नहीं संदेह।

प्राण है आचार उसकी, संगठन है देह।। नंदन पृ. 17।।

अध्यात्मिक संत होते हुए भी आचार्य तुलसी ने लौकिक रीति–रिवाजों एवं उत्सवों की उपेक्षा नहीं की। उन्होंने जीवन के विभिन्न संस्कारों में आध्यात्मिकता का पुट देकर उसे नवीन रूप प्रदान किया। आचार्य तुलसी सामाजिक उत्सवों पर आमोद–प्रमोद के विरोधी नहीं थे लेकिन उन अवसरों पर होने वाली गलत प्रथा के विरोधी थे।

और यह हम सभी जानते है कि अपसंस्कृति पर जब–जब किसी महापुरुष ने प्रहार किया है, उसे जनता के विरोध का सामना भी करना पड़ा है। सरल–सरस भाषा में तत्कालीन लोकापवाद की प्रस्तुति मन को आकृष्ट करने वाली है–

अचरज तो आगै ही हुया घणांई,

पण अै बातां तो अै म्हाराज सुणाई।

नहिं फूल घालणां आज कहै आपां नै,

काले कहसी मत दफणाओ मुरदां नै।

अै किसी आज री रीतां चलै सदा री,

गंगा में घालै फूल जैन व्रत–धारी।।

तीया, बारा, ओसर–मोसर सिर–पल्ला,

सारा छुड़वासी कुण जाणै के सल्ला?

यूं सारी रीत–रिवाजां जो तुड़वासी,

अपणै समाज री के हालत बण ज्यासी।

आ खड़यै खेत नै हे भेलण की त्यारी,

गंगा में घालै फूल जैन व्रत–धारी।। डालिम पृ. 190।।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि आचार्य तुलसी ने काव्य के माध्यम से न केवल समाज–विकास की नई दिशा एवं प्रेरणा दी अपितु उसे सब प्रकार से समुन्नत बनाने के सूत्र भी प्रस्तुत किए। समाज का शायद ही कोई विकृत अंश उनकी लेखनी से अछूता रह पाया हो। वे शाश्वत आदर्शों को समाज में मूर्त्त रूप में देखना चाहते थे। आचार्य तुलसी इस बात से आशान्वित थे कि अणुव्रत के माध्यम से भारत में पुनः रामराज्य और स्वर्णिम युग आएगा और मानवता का नव–निर्माण होगा।

---

1. प्रेमचन्द, कुछ विचार, पृ. 3।
2. कालिदास और उनकी कविता, पृ. 118
3. 24.9.65 का प्रवचन